भारतीय जाति व्यवस्था का सैद्धान्तिक : विश्लेषण

डॉ० राकेश कुमार
सहायक अध्यापक
आदर्श नागरिक इण्टर कॉलिज,
खजूरी, मेरठ (उ०प्र०)
ईमेलः rakeshkumarmeerut@gmail.com

सारांश

प्रत्येक समाज का ढाँचा उस समाज में रहने वालों की आकांक्षाओं की पूर्ति का साधन होता है, परन्तु समय के साथ–साथ जब परम्परागत ढाँचा नहीं बदलता तो समाज में रहने वालों की आकांक्षाओं की पूर्ति में वह बजाय साधक होने के, बाधक होने का कार्य करने लगता हैं, इसलिए आवश्यक है कि बदले हुए समाज में एक बदला हुआ ढांचा अपनाकर आवश्यक समायोजन लाया जाये। आधुनिक दौर में उभरते राजनीतिक समूहों के जन्म के साथ–साथ विभिन्न जातियों, उद्देश्यों और आदर्शों के आधार पर विभिन्न जातियों के लोग जाति निरपेक्ष मंचों पर आये हैं नतीजन विभिन्न जातियों के नेताओं का एक साथ मिलन ही जाति प्रथा के परम्परागत स्वरूव में परिवर्तन का द्योतक है। जाति पृथकत्व का तत्व राजनैतिक जीवन में बहुत अधिक पाया जाता है, जो सामाजिक और राजनैतिक आचार तत्व का अंग बनी हुई है। वास्तविकता यह है कि आजादी के बाद लोगों की प्रत्याशायें बढ़ गई हैं वे अधिक से अधिक लौकिक वस्तुओं की मांग करते हैं और लोकतंत्र में अपने अधिकारों और शक्ति के लिए जागरूक हो गये हैं।

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 25.02.2022
Approved: 14.03.2022

डॉ० राकेश कुमार

भारतीय जाति व्यवस्था का सैद्धान्तिक : विश्लेषण

RJPP Oct.21-Mar.22,
Vol. XX, No. I,

pp.126-131
Article No. 16

Online available at *:*
https://anubooks.com/rjpp-2022-vol-xx-no-1

भारतीय जाति प्रथा अपनी तरह की एक विचित्र रोचक संस्था हैं धर्म की सीमा के बाहर हिन्दुओं का जो कुछ भी अपनापन है, उसकी अनोखी अभिव्यक्ति यह जाति प्रथा हैं अनेक समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने वैज्ञानिक आधार पर भारतीय जाति प्रथा को समझाने का प्रयास किया है। भारतीय जाति प्रथा एक बहुत स्थिर तथा रूढ़िवादी संस्था है। जाति के नियम व निषेध कठोर अवश्य ही हैं। वर्तमान समय में इस कठोरता का पालन कठोरता से ही किया जा रहा है। इसका परम्परागत स्वरूव बदल रहा है। इसे परिस्थितियों के अनुसार बदलना ही है, क्योंकि परिवर्तन ही प्रवृत्ति का नियम है।

जाति व्यवस्था हिन्दुओं की एक अनोखी संस्था है, जो उनके आर्थिक तथा सामाजिक जीवन को एक तरह से प्रभावित करती है। जाति व्यवस्था पूर्ण रूपेण एक भारतीय व्यवस्था है। हमारे देश की जटिल विस्तृत, कठोर जाति व्यवस्था जैसी संस्था अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

डॉ0 मजूमदार का कथन है कि इस सामाजिक व्यवस्था के इतिहास और प्रकार्य के सम्बन्ध में एक शताब्दी के परिश्रम और सावधानीपूर्वक किये गये अनुसंधान के पश्चात भी निश्चित रूप से उन परिस्थितियों की व्याख्या नहीं कर पाये हैं, जिन्होंने इस विशिष्ट व्यवस्था के निर्माण और विकास में योगदान दिया है।

भारत वर्ष में लगभग 3000 जातियां और उपजातियां हैं। यही कारण है कि इतनी अधिक जातियां तथा उपजाजियों का अध्ययन असंख्य विद्वानों द्वारा किया गया। भारतीय विद्वानों ने व्याख्यात्मक रूप से जाति प्रथा को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अनेक समाजशास्त्रियों और मानवशास्यिों ने इस जाति प्रथा का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन किया है। ऐसे भी अनेक विद्वान हैं जिन्होंने जाति प्रथा के महत्व और कार्यों का भी निरूपण हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में किया है। प्रत्येक समाज की सामाजिक रचना भी विभिन्न स्तरों में विभाजित होती है जिनकी प्रतिष्ठा में काफी अन्तर पाया जाता है। भारतीय समाज में एक अनुपम प्रकार का सामाजिक स्तरीकरण पाया जाता है। यहां ऊँच–नीच का प्रमुख आधार एक विशेष प्रकार के सामाजिक समूह है। जिन्हें जातियां कहा जाता है तथा इस व्यवस्था को जाति व्यवस्था कहते हैं।

समाजशास्त्री हट्टन के अनुसार रिजले ने कहा है कि जाति का कोई काल्पनिक सामान्य पूर्वज नहीं होता है। विभिन्न जातियों की उत्पत्ति किसी काल्पनिक पूर्वज से नहीं हुई है। केवल कायस्त जाति तथा कुछ अन्य जातियां विभिन्न काल्पनिक पूर्वज से अपनी उत्पत्ति मानती हैं। मगर कुछ ही जातियों के इस दावे को सभी जातियों पर सामान्य रूप से लागू करके सामान्य निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है। क्योंकि इसमें जाति के अनेक आवश्यक पदों की अवहेलना की गई है। जाति प्रथा के दो आवश्यक अंग हैं, लेकिन केवल दो तत्वों की विशेषताओं के आधार पर सम्पूर्ण विश्लेषण सम्भव नहीं है इसमें केवल संरचनात्मक पक्ष का ज्ञान होता है। संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक पहलुओं पर भी इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि यह कथन अधूरा व त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि जाति प्रथा का संस्थात्मक या प्रकार्यात्मक पक्ष उसके संरचनात्मक पक्ष से अधिक महत्वपूर्ण है। जाति का तीसरा दोष यह है कि उन्होंने एक जाति को केवल उन व्यक्तियों की राय में एक सजातीय समुदाय माना है, जो अपना ऐसा मत व्यक्त करने योग्य है उसका यह कथन अस्पष्ट और अवैज्ञानिक है। अतः यह भी स्पष्ट नहीं होता कि मत या राय व्यक्त करने वाले कौन से व्यक्ति हैं और उनकी राय व्यक्त करने की योग्यता किन बातों पर निर्भर करती है।

रिजले के अनुसार– जाति की एक समुदाय के रूप में कल्पना समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से त्रुटिपूर्ण है। जाति प्रथा का आधार ही ऊँच–नीच की भावना है, जिसके कारण एक ही जाति में अनेक विभाजन और अविभाजन देखने को मिलते हैं। ब्लन्ट के अनुसार– एक जाति एक अन्तः विवाही समूह का संकलन है, जिसका एक सामान्य नाम है, जिसकी सदस्यता वंशानुगत है, जो अपने सदस्यों पर सामाजिक सहवास के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबन्ध लगाती है, एक सामान्य परम्परागत पेशे को करती है या एक सामान्य उत्पत्ति का

दावा करती है और सामान्यतया समरूप समुदाय को बनाने वाली समझी जाती है। जाति एक सामान्य उत्पत्ति का दावा करती है जबकि यह दावा केवल गोत्र ही करते हैं। इन त्रुटियों के होते हुए भी इस परिभाषा से संरचनात्मक तथा संस्थात्मक पक्ष का भी कुछ बोध हो जाता है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि जाति एक अन्तःविवाही है, जाति अपने सदस्यों पर सामाजिक सहवास के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध लगाती है तथा जाति की सदस्यता वंशानुगत या जन्म पर आधारित है।

केतकर के अनुसार जाति एक सामाजिक समूह है जिसकी दो विशेषताऐं हैं, जाति की सदस्यता उन व्यक्तियों तक ही सीमित है, जो उस जाति विशेष के सदस्यों से ही पैदा हुई है और इस प्रकार उत्पन्न होने वाले सभी व्यक्ति जाति में आते हैं। जिनके सदस्य एक अविच्छिन सामाजिक नियम के द्वारा अपने समूह के बाहर विवाह करने से रोक दिये गये हैं। कुछ विद्वान जाति व्यवस्था पर गहन चिन्तन करते हैं, उनका कहना है कि यह शायद श्रम विभाजन का प्रश्न है, खुद पेशों से ही जातियों का उद्‌भव हुआ होगा हालांकि, कुछ ऐसे विद्वान भी हैं जो इससे सहमत नहीं है।

डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर भी इस बात से सहमत नहीं है। ''क्या सभी देशों में हम श्रम विभाजन नहीं पाते हैं फिर वर्ण व्यवस्था भारत में ही क्यों पैदा हुई जो कि दूसरे देशों में नहीं हैं।''

जो विद्वान श्रम विभाजक के तर्क को आधार मानते हैं उनका यह भी कहना है कि जाति व्यवस्था तो भारत में इसलिए पैदा हुई क्योंकि श्रम विभाजन की परिघटना में कुछ परिस्थितियां जुड़ गई होंगी। ऐसी परिस्थितियां दूसरे देशों में मौजूद नहीं रही होगी। लेकिन कोई भी विद्वान यह नहीं बता पाते कि वे विशेष परिस्थितियां क्या थीं। जाति का ठीक–ठीक अर्थ क्या होता है? इसके लक्षण क्या है? क्या कोई अनिवार्य लक्षण भी है? हालांकि जाति की पहचान इस बात से होती है कि लोग आनुवंशिक रूप से अपना जातिगत व्यवसाय कर रहे होते है। एक समूह का दूसरे समूह के साथ अन्तर सामूहिक खान–पान के सम्बन्धों का अभाव रहता है, लेकिन ये जाति के मूल लक्षण नहीं हैं। वास्तविक लक्षण यह है कि विवाह उसी समूह में होते हैं।

जाति की उत्पत्ति

हिन्दी भाषा का जाति शब्द अंग्रेजी भाषा के 'Caste' शब्द का पर्यायवाची है। अंग्रेजी का 'Caste' पुर्तगाली शब्द 'Caste' से बना है, जिसका अर्थ प्रजाति, जन्म या भेद होता है। इस अर्थ में जाति प्रथा प्रजातीय या जन्मगत क्षेत्र के आधार पर एक व्यवस्था हैं अंग्रेजी के 'Caste' शब्द का अर्थ वंश, कुल अथवा प्रकार है। रिजले ने इसकी व्याख्या निम्न प्रकार दी है– एक ही नाम वाले अपने को देवी या मानवीय पौराणिक पूर्वजों की सन्तान मानने वाले, एक ही वंशानुगत उद्यम का अनुसरण करने वाले तथा एक मात्र सजातीय समुदाय बनाकर एक ही विचारधारा वाले लोगों के सम्मानित परिवारों अथवा परिवारों के समूहों के एक संग्रह को जाति कहा जाता है।

भारत में जाति व्यवस्था संसार से सभी विचारकों के लिए अनोखी जटिल और आश्चर्यजनक संस्था रही है। यूरोप के आरम्भिक समाजशास्त्री जाति व्यवस्था को पूर्णतया एक कृत्रिम संस्था मानते थे, जिसका निर्माण ब्राह्मणों के द्वारा अपने हितों को सुरक्षित करवाने के लिए हुआ। बहुत से विचारकों ने व्यवसायगत भिन्नता, प्रजातीय भिन्नता अथवा रंग विशुद्धता की भावना, जनजातीय विश्वास और टोटम, कर्म की धारणा, धार्मिक विश्वास और सांस्कृतिक समूहों आदि के आधार पर जाति विभाजन को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। हिन्दू समाज व्यवस्था जातीय विभाजन के आधार पर बनी है, जटिल सामाजिक संस्था का एक उदाहरण है।

जातियों का वर्गीकरण

सर हरबर्ट रिजले ने सम्पूर्ण जातीय व्यवस्था को निम्नलिखित सात भागों में बांटा है–

1. जनजातीय प्रारूप

2. व्यवसायात्मक प्रारूप
3. साम्प्रदायिक प्रारूप
4. व्यसन द्वारा बनी जातियां
5. राष्ट्रीय प्रारूप की जातियां
6. देशान्तर गमन से बनी जातियां
7. रीति–रिवाजों से बनी जातियां

जाति उत्पत्ति के सैद्वान्तिक विचार

प्रथम सिद्धान्त में प्राचीन परम्पराओं के अनुसार ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय और जंघा से वैश्य तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई। मुख से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मणों को पवित्र माना गया तथा उनका कार्य पढ़ना और पढ़ाना माना गया। भुजाओं को शक्ति का प्रतीक माना गया, अतैव क्षत्रियों का कार्य लड़ना या रक्षा करना माना गया। पेट का कार्य व्यवसाय करना मान गया ताकि कोई व्यक्ति भूखा न रहे। ये कार्य वैष्य समुदाय के लोग देखते थे और पैरों का कार्य समस्त शरीर की सेवा करना है। अतः पैरों से उत्पन्न होने वाले शूद्रों का कार्य अन्य तीनों वर्गों की सेवा करना बताया गया है।

समाजशास्त्रियों ने परम्परागत सिद्धान्त को जाति की उत्पत्ति का सिद्धानत नहीं माना है, उनका कहना है कि यह सिद्धान्त वर्ण की उत्पत्ति का सिद्धान्त है। इसको जाति की उत्पत्ति का सिद्धान्त मानना भारी भूल होगी। **नेसफील्ड के अनुसार** विभिन्न प्रकार के व्यवसायों तथा उद्योग धन्धों के आधार पर जाति प्रणाली की उत्पत्ति हुई। व्यवसाय और केवल व्यवसाय ही जाति प्रणाली की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी है।

हट्टन ने माना कि नेसफील्ड का व्यवसायिक सिद्धान्त धर्म पर आधारित नहीं है अतैव इस सिद्धान्त को जाति की उत्पत्ति का सिद्धान्त नहीं माना जा सकता है।

रिजले के अनुसार प्रजातीय सम्पर्क वर्ग भेद की भावना से उत्पन्न वर्णव्यवस्था आदि के कारण जाति की उत्पत्ति हुई। आर्य लोग भारत आये और उन्होंने द्रविड़ों को हराया। इन आर्यों के साथ स्त्रियां नहीं आई थीं। अतैव इन्होंने अनुलोम विवाह को जन्म दिया, किन्तु प्रतिलोम विवाह को जन्म नहीं दिया। आर्यों ने अपनी रक्त शुद्धि बनाये रखने के लिए अपने को दूसरों से अलग रखा इस उच्चता की भावना के कारण जाति का जन्म हुआ।

डॉ0 मजूमदार ने कहा कि आर्य लोगों ने द्रविड़ों को हराकर समाज में विभाजन की प्रक्रिया को जन्म दिया इसलिए जाति प्रथा को प्रोत्साहन मिला।

कुछ विद्वानों ने ''माना'' सिद्धान्त को जाति प्रथा की उत्पत्ति का कारण माना तथापि इसका विरोध किया गया कि यह केवल आदिम जातियों में पया जाता है अतैव आदिम जातियों के विश्वास के कारण ही इस मत को प्रथा की उत्पत्ति का सिद्धानत नहीं मान सकते।

जाति की उत्पत्ति का एक सिद्धानत यह है कि भारत की विभिन्न प्रजातियों की सांस्कृतिक विशेषताओं के आपसी मिलन तथा अन्तः क्रिया के फलस्वरूप जाति व्यवस्था की उत्पत्ति हुई राय बहादुर चन्द्र बोस का मत है कि भारत में द्रविड़ तथा प्राग द्रविड तथा इण्डो–आर्यन आदि प्रजातियों ने एक–दूसरे की संस्कृति को प्रभावित किया है, संस्कृति के इस सम्मिश्रण से विभिन्न जातियों का जन्म हुआ।

इसके अतिरिक्त सेनार्ट, होकार्ट का धार्मिक सिद्धान्त जाति प्रथा की उत्पत्ति की व्याख्या करना है।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन के आधुनिक कारक

जाति प्रथा के सम्बन्ध में वर्तमान युग में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए। अंग्रेजी राज्य काल में पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के प्रभाव से और उसके साथ ही नई आर्थिक व्यवस्था यातायात और संचार के साधनों में उन्नति, नगरों का प्रभाव तथा राजनैतिक व धार्मिक आन्दोलनों के फलस्वरूप जाति–प्रथा में

क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। सन् 1850 ई0 में जाति निर्योग्यता उन्मूलन अधिनियम जाति के प्रभावों को रोकन के लिए सरकार का पहला कदम था। सन् 1955 ई0 में हिन्दू विवाह अधिनियम पास हुआ, जिसके अनुसार जाति प्रथा द्वारा लागू किये गये प्रतिबन्ध समाप्त किये गये। सन् 1955 ई0 में ही अस्पृश्यता की निर्योग्यताओं को समाप्त कर दिया गया है तथा अस्पृश्यता को मानने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था की गई।

वर्तमान समय में जाति प्रथा में निम्नलिखित कारकों द्वारा तेजी से परिवर्तन हो रहे हे। अंग्रेजी शासन स्थापित हो जाने के बाद अंग्रेजों ने धर्म निरपेक्ष शिक्षा का प्रचलन किया। आधुनिक समाज की प्रमुख विशेषता यह है कि आज व्यक्तिगत योग्यता का अधिक महत्व है तथा आधुनिक शिक्षा वैज्ञानिक ज्ञान भण्डार को भी विस्तृत करती है। आधुनिक शिक्षा से प्रजातन्त्रीय समानता के सिद्धान्तों की लोकप्रियता भी बढ़ती जा रही है। ये सिद्धान्त इस बात पर बल देते हैं कि जन्म और परिवार के आधार पर ऊँच–नीच का विभाजन उचित नहीं। इन सिद्धान्तों से जाति प्रथा में पाई जाने वाली असमानता और शोषण नीति को भारी धक्का लगा और साथ ही इसके द्वारा जाति प्रथा में परिवर्तन करने में सहायता मिली है।

जाति की परम्परागत आर्थिक व्यवस्था में बुनियादी बदलाव यह आया कि उत्पादन कार्य गांव से निकलकर शहर के बड़े–बड़े कारखानों में चले गये। शहरों में बड़े–बड़े कारखानों में काफी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता हुई। इस आवश्यकता की पूर्ति जाति व्यवस्था के आधार पर सम्भव न थी, इसलिए सभी जातियों ने मिल और कारखानों में नौकरी कर ली, जिसमें जातीय आधार पर पाई जाने वाली सामाजिक दूरी कम हो गई तथा इससे छुआछूत की भावना और पेशा सम्बन्धी प्रतिबन्ध भी दिन–प्रतिदिन टूटते गये। वास्तव में औद्योगिक उन्नति के फलस्वरूप जिस नवीन अर्थव्यवस्था का विकास हुआ, उसमें प्रत्येक जाति के सदस्यों के लिए प्रत्येंक प्रकार के आर्थिक कार्य करने की समान स्वतन्त्रता उपलब्ध है, जो स्वयं जाति प्रथा में परिवर्तन लाने का एक प्रमुख कारण बन जाता है।

आधुनिक समय में धन का बहुत महत्व है, ऐसे में व्यक्ति की मनोवृत्ति बन जाती है कि धन और व्यक्तिगत गुणों के आधार पर उसकी सामाजिक स्थिति किसी भी समय ऊँची उठ सकती है।

औद्योगिकी की उन्नति और विकास के साथ–साथ पेशे को चुनने की स्वतंत्रता ने जातीय संस्था को कमजोर करने में महती भूमिका निभाई।

आवागमन के साधनों की उन्नति के फलस्वरूप यातायात के साधन जैसे ट्रेन, बस आदि में सब जाति के लोग एक साथ यात्रा करने लगे, जिससे लोगों में खाने–पीने के प्रतिबन्ध तथा छुआ–छूत की भावना भी समाप्त हो गई। जाति प्रथा को समाप्त करने में संचार के साधनों के अतिरिकत रेडियो, समाचार पत्रों–पत्रिकाओं तथा पुस्तकों का प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रेडियों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर विचारों का आदान–प्रदान सम्भव हुआ। परिणामस्वरूप जाति–प्रथा के विरूद्ध एक स्वस्थ जनमत का निर्माण करने में सहायता की।

आधुनिक युग में औद्योगीकरण के विकास के कारण नवीन सामाजिक वर्गों का जन्म हुआ है, ये सामाजिक वर्ग आर्थिक आधार पर संगठित होते हैं, इनकी यूनियन बनती है, इनके संघों का निर्माण होता है। आधुनिक समय में सांस्कृति क्षेत्र में भी अनेक नये समूहों का जन्म हुआ है, जिसके द्वारा जातियों की पारस्परिक दूरी घट गई है और जातीय प्रतिबन्ध भी शिथिल हो गये हैं। राजनैतिक क्षेत्र में भी अनेक नये समूहों का जन्म हुआ है। वे भी विभिन्न जातियों के मिलन केन्द्र के रूप में कार्य करते हैं। विभिन्न जातियों के विभिन्न नेताओं का एक साथ मिलन ही जाति प्रथा के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन का द्योतक है।

सन्दर्भ

1. आहूजा, डॉ. राम. (1997). सामाजिक समस्याऐं और सामाजिक परिवर्तन. राजस्थान विश्वविद्यालयः जयपुर. **पृष्ठ 1, 218.**

2. मुकर्जी, डॉ. रवीन्द्र नाथ. (1964). भारतीय सामाजिक संस्थायें सरस्वती सदन. मसूरी. **पृष्ठ 227, 189, 193, 145–170.**
3. Nicholas, Ralph W. (1960). "Structures of Polities in the Villages of Sourthern Asia in Structures and Change in Indian Society", Edited by Melton Singer Aldine Publishing Co., Choicago. **Pg. 243.**
4. Majumdar, D. N. (1958). Raees and Culture of India. Asia Publishing House: Bombay. **Pg. 284.**
5. मदान, डॉ. जी. आर. (1974). भारत का ग्रामीण समाज. रामनगरः नई दिल्ली. **पृष्ठ 277.**
6. श्रीनिवास, डॉ. एम. एन. (1971). आधुनिक भारत में जातिवाद तथा अन्य निबन्ध. हिन्दी अकादमीः भोपाल. मध्य प्रदेश. **पृष्ठ 81.**
7. राम, जगजीवन. (1981). भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या. राजपाल एण्ड संसः दिल्ली. **पृष्ठ 91.**
8. गुप्ता, मोतीलाल. (1993). भारतीय सामाजिक संस्थाऐं. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमीः जयपुर. **पृष्ठ 79.**
9. कोठारी, डॉ. रजनी. (1972). भारत में राजनीति. अनुवादक अशोक ओरियन्ट लॉगमेन लिमिटेडः नई दिल्ली. **पृष्ठ 17.**
10. Kethkar, S. V. (1909). History of Caste in India. New York: **Pg. 15.**
11. रंगनायकम्मा. (2008). जाति प्रश्न के समाधान के लिए. राहुल फाउण्डेशनः लखनऊ. **पृष्ठ 19–21.**
12. दुबे, श्यामचरण. (2001). भारतीय समाज. नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डियाः नई दिल्ली. **पृष्ठ 46–56.**
13. प्रसाद, नर्मदेश्वर. (1965). जाति व्यवस्था, ज्ञान प्रकाशनः दिल्ली. **पृष्ठ 18.**
14. Risley, Sir Herbert. (1915). The Preperty India. London. **Pg. 15.**
15. Agarwal, G. K. and Jain, Dr. J. D. (1989-90). Indian Culture and Social Institution. Agra. **Pg. 288, 296-304.**
16. Dubey, S. C. (1985). An Indian Village. National Publishing House: Delhi. **Pg. 34.**
17. कोठारी, डॉ. रजनी. (1988). भारत में राजनीति. संगम प्रेस लिमिटेडः पूना. **पृष्ठ 18.**
18. गुप्ता, मोतीलाल. (1972). भारतीय सामाजिक संस्थाऐं. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमीः जयपुर. **पृष्ठ 79, 80–282.**
19. Pandhari, Nath H. Prabh. (1963). Hindu Social Organization. Popular Prakashan: Bombay. **Pg. 286.**
20. धुर्ये, जी. एस. (1961). जाति वर्ग एवं व्यवसाय. पॉपुलर बुक डिपोः बम्बई. **पृष्ठ 26.**
21. कर्वे, इरावती. (1971). हिन्दू समाज और जाति व्यवस्था. डेकन कॉलिजः पूना. **पृष्ठ 15–27.**
22. अम्बेडकर, डॉ. बी. आर. द अनटचेवल्स. अमृत बुक कम्पनीः नई दिल्ली. **पृष्ठ 10–66.**
23. सेल्वराज, श्री बालकृष्ण. (1999). भारत में सामाजिक समस्याएं. इग्नू. दिल्ली. **पृष्ठ 44.**
24. तिवारी, नवल कान्त. (2006–07). विकास का आईना. सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग. गाजियाबाद. **पृष्ठ 45.**